International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

प्रेम नारायण 'पंकिल' के काव्य में विप्रलम्भ शृंगार: एक अध्ययन

आमोद प्रकाश चतुर्वेदी

सहायक प्राध्यापक-हिन्दी, ग्राम भारती महाविद्यालय, रामगढ़, कैमूर-821110 (बिहार)

सारांश

हिन्दी साहित्य का स्थापित संसार कवि श्री प्रेम नारायण 'पंकिल' के नाम से अपरिचित-सा ही है। ऋषिधर्मा कवि श्री 'पंकिल' एक बहुमुखी साहित्यकार हैं जिन्होंने साहित्य की लगभग हर विधा में अपनी लेखनी चलाई है। आज के अतुक और अगेय कविता के दौर में पंकिल अपनी कविताओं में मधुर संगीत रच जाते हैं। यथार्थवाद के तुमुलनाद में पंकिल अपनी कल्पना की प्रतिभा से एक मखमली वितान रच जाते हैं। नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा उनसे बहुत कुछ ऐसा रचवा लेती है जहाँ आज के पार्टीवादी साहित्यकार और कवियों की पहुँच हो ही नहीं सकती हैं। वर्तमान समय में भाषा के अवयवों की बात तो छोड़ ही दी जाय नाद-सौंदर्य भी अब अतीत की वस्तु है। ऐसे में पंकिल की कवितायें हमें काव्य-भाषा का ज्ञान कराती-सी प्रतीत होती हैं। सकलडीहा इण्टर कॉलेज सकलडीहा, चंदौली में अंग्रेजी के प्रवक्ता पद से सेवानिवृत्त श्री 'पंकिल' अहर्निश साहित्य-शिल्पन में जुटे हुए हैं। प्रस्तुत आलेख में भारतीय काव्यशास्त्रीय मानकों पर उनके काव्य में विप्रलम्भ-शृंगार का एक अध्ययन प्रस्तुत कर किया गया है।

बीज-शब्द - संयोग, वियोग, विरह-दशायें, प्रवास, मान

प्रेम तो प्रेम होता है उसकी कोई कोटि नहीं होती फिर भी काव्यशास्त्रीय परिपाटी के अनुसार साहित्य में यह प्रेम शृंगार रस के अंतर्गत आता है जिसका स्थायी भाव है रति। शृंगार रस के दो भेद किये जाते हैं-१. सम्भोग अथवा संयोग शृंगार २. विप्रलम्भ अथवा वियोग शृंगार। यहाँ केवल विप्रलम्भ शृंगार और विशेषत: पंकिल के काव्य में विप्रलम्भ शृंगार का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

विप्रलम्भ (वियोग) शृंगार-

नायक और नायिका के पारस्परिक अनुराग में जो मिलन की निराशा है, वही साहित्य में विप्रलम्भ शृंगार है।[1] इसी मिलन-नैराश्य की साधारणीकृत संज्ञा है- विरह। पंकिल का विरह वर्णन बहुत गंभीर है। ये विरह-वर्णन में शब्दों की बाजीगरी नहीं दिखाते हैं बल्कि हृदय की तीव्र-वेदना को कुरेद-कुरेद कर रख देते हैं। अपने वर्णनों में ये हृदय की आकुलता

को प्रकट करने वाले संकेतों का प्रयोग करते हैं। यह विरह पाठक को स्वानुभूति के स्तर तक खींच लेने में समर्थ है। पंकिल के काव्य में संयोग की अपेक्षा वियोग का वर्णन अधिक मिलता है-

बस एक तुम्हारे सिवा श्याम! है अन्य किसी की चाह नहीं
घर उजड़े बसे बने-बिगड़े इसकी मुझको परवाह नहीं
पद-रज से वंचित रखो नहीं प्रिय! मैं पदतरी तुम्हारी हूँ
छीनो मत अपनापन जीवनधन! मैं अनुचरी तुम्हारी हूँ
तेरे वियोग की असहनीय अब पीर नहीं सह पाऊँगी
सुख हुआ हाय! अपना सपना अपना कह किसे बुलाऊँगी
फिरती नगरी-नगरी-डगरी बावरिया बरसाने वाली-
क्या प्राण निकलने पर आओगे जीवन वन के वनमाली॥[2]

साहित्य में कृष्ण और गोपियों के विरह पर जितना लिखा गया है उतना किसी और विषय पर नहीं लिखा गया है। पंकिल ने भी कृष्ण और राधिका के प्रेम पर बहुत कुछ लिखा है। कृष्ण मथुरा से चले जाते हैं, रह जाती हैं तो केवल ब्रज में गोपियाँ और दुखी नंद-यशोदा। वियोग की जितनी दशाएं हो सकती हैं और जिस प्रकार उन दशाओं का वर्णन साहित्य में हो सकता है वह सब सूर के साहित्य में विद्यमान है। अब यहाँ देखने की बात यह है कि परम्परावादी भक्त कवि होने के बावजूद पंकिल के विरह-वर्णन में ऐसा क्या है जिससे इनका वर्णन नायिका के शरीर के ताप से कमल के पत्तों के जल जाने, पास-पड़ोस के झुलस जाने या गुलाब जल की शीशी के सूख जाने जैसे प्रयोगों से अलग है। उत्तर है-पंकिल की स्वानुभूतिपरक वर्णनात्मकता। पंकिल भक्त कवि हैं। इस कारण कहीं-कहीं तो ईश्वर के प्रति इनका उत्कट प्रेम ही राधादि गोपकन्याओं के विरह के रूप में फूट पड़ा करता है-

कैसे विस्मृत कर दूँ प्रिय! जो इस निशि की मधुर कहानी है
उस गहन प्रीति को तौल सके क्या ऐसी बनी कमानी है!
रवि-विरह-ताप में तप्त कमलिनी सर में सोयी नि:श्वसिता
कुमुदिनी अमृत पी विधु-घट से थी अतिशय नृत्य-रता मुदिता
यामिनी कर्ण में चंद्रफुसी था कर रहा ज्योति वीणा
थे छेड़ रहे जुगुनू अमन्द थी अभि नव प्रकृति हर्ष-लीना
प्रिय! अब न निशा वैसी...[3]

1. वप्रलम्भ शृंगार के प्रकार-

मम्मट ने विप्रलम्भ शृंगार को अभिलाष, ईर्ष्या, विरह, प्रवास और शाप हेतुक होने के कारण पांच प्रकार का माना है।[4] आचार्य विश्वनाथ आदि कुछ अन्य आचार्य विप्रलम्भ के चार ही भेद मानते हैं-

पूर्वानुरागमानाख्यप्रवासकरुणात्मना।
विप्रलम्भाभिधानयं शृंगार: स्याच्चतुर्विध:॥[5]

ये चार भेद हैं- पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण। ध्यान देने की बात है कि इसका अंतिम भेद करुण करुणरस से इतर करुण-विप्रलम्भ है। यहाँ मम्मट का अभिलाष और ईर्ष्या क्रमश: विश्वनाथ के पूर्वराग और मान का नामांतर भर है। पंकिल की रचनाओं का रस-शास्त्रीय विवेचन मुख्यतया साहित्यदर्पण के आधार पर निम्न प्रकार से किया जा सकता है-

1.1 पूर्वराग विप्रलम्भ-

भावी संयोग से पूर्व की स्थिति पूर्वराग-विप्रलम्भ अथवा अभिलाष कहलाता है। इसकी भी दस-दशाओं का उल्लेख मिलता है-

अभिलाषाश्चिंता स्मृति गुणकथनोद्वेग संप्रलापाश्च।

उन्मादोऽथ व्याधिर्जड़ता मृतिरिति दशात्र कामदशा॥[6]

ये दस दशायें निम्न हैं-

1.1.1 अभिलाषा-

नायक और नायिका की पारस्परिक स्पृहा अभिलाषा कही जाती है। इसमें विरही या विरहिणी एक-दूसरे से मिलने की आशा लिये दग्ध होते रहते है। पंकिल की राधा पगली-सी इस आशा में घूम रही है कि कभी तो उससे मिलने आयेंगे-

आशा ले घूम रही पगली अब आओगे, अब आओगे

पायेगी भिखमंगिनि भिक्षा प्रियतम कितना तरसाओगे
पल युग सम बीत रहा दृग से हा! कुछ न सूझने वाला है
करुणेश तुम्हारे बिना यहाँ दु:ख कौन बूझने वाला है
विकसित नीलेन्दीवर मेरे मैं रस मधुकरी तुम्हारी हूँ

तुम हो मेरे तमाल तरुवर मैं कनक लता रसधारी हूँ॥ [7]

1.1.2 चिंता-

यहाँ चिंता का अभिप्राय है नायक अथवा नायिका के द्वारा परस्पर मिलन हेतु उपायों का चिंतन करना। इस हेतु वे नाना प्रकार की कल्पनायें करते हैं। उन कल्पनाओं के द्वारा वे भावी मिलन एवं तद्नुसार अपने प्रियतम के प्रति स्नेह का प्रकटन करते हैं। यहाँ पंकिल की नायिका राधा अपने परम दुलारे कृष्ण से मिलन का चिंतन करती हैं-

आ जा व्रजपति के परम दुलारे! माखन तुम्हें खिलाऊँगी।
आ मेरे नयनों के तारे! मैं चरण-कमल सहलाऊँगी।
कब से हैं तरस रही आँखे मैं बुला-बुलाकर हारी हूँ।
आँचल फैलाये दरस-भीख माँगती निरीह भिखारी हूँ।

हे राधा-आराधनवारे आ, हिय-रस तुम्हें पिला पाऊँ।

आ मिलो प्रेम-मतवारे! मैं तेरे उर-बीच समा जाऊँ।[8]

पंकिल की उसी रचना से चिन्ता के अंतर्गत यह दूसरा पद भी लिया जा सकता है जहाँ वे कृष्ण से अनुनय-विनय करती हुई मोर-मुकुटवाले को मिलने के लिये कह रही हैं-

देखे बिन पलभर भी न रहा जाता है हे मुरली वाले!
पैरों पड़ती हूँ अब न बहुत तरसाओ मोर मुकुटवाले!

दुत्कारो, फटकारो, 'पंकिल' सब यह कलंकिनी सह लेगी

पर सम्भव नहीं तुम्हारे बिन प्रिय! दुखिया राधा रह लेगी
मैं मान रही हूँ तेरे लायक हूँ मेरे प्राणाधार नहीं

मृत्तिका-दीप-अर्चन पर क्या करता दिनमणि स्वीकार नहीं[9]

1.1.2 स्मृति-

नायक अथवा नायिका के पूर्व के क्रिया-कलापों का वर्णन करना स्मृति या स्मरण के अंतर्गत आता है। इसमें विरही या विरहिणी पुरानी बातों की चर्चा करते हैं या उनका स्वगत कथनों में स्मरण करते हैं। ऐसे ही एक प्रकरण में राधिका कृष्ण को याद करती हैं-

आ जा हे प्राणों के राजा! अब याद तुम्हारी गाढ़ हुई
आनन का फागुन हुआ विदा विरही आँखें आषाढ़ हुई
घिरते नभ में हैं सजल जलद अनजाने आते लोचन भर
कितनी सुखप्रद थीं वे बाहें रह रह जाती है आह उभर
प्रिय! शयन-सदन-शैय्या प्रसून-सी अब बबूल की डाढ़ हुई
क्या कहूँ नियति की विकट पिशाची मुँह फैलाये ठाढ़ हुई॥[10]

1.1.3 गुणकथन-

ब्रजाङ्गनाओं को छोड़कर निर्मोही कृष्ण मथुरा से कभी वृन्दावन नहीं आते हैं। ब्रज के पादप-तृण तक उनके वियोग में दग्ध हैं। राधिका उनके गुणों का स्मरण कर रही हैं। उनके कार्यों के बहाने उन्हें याद कर रही हैं। इसे ही गुणकथन माना जाता है-

चंचल मयूर-चंद्रिका भाल मेरे मानस-सर के मराल
अनुनय करते मेरे चरणों पर लोट गये थे नंदलाल
हे कृष्णचंद्र! व्रजपति-किशोर! कालिंदी तट क्रीड़ाचारी
हे कमलोपम पदचुम्बि बिलम्बित मनमोहन मालाधारी
हा-हा करती पछाड़ खा-खा कहती प्राणेश श्यामसुंदर
तुम आये नहीं घिरे अम्बर में उमड़-घुमड़ श्यामल जलधर [11]

इसी तरह विरही यक्ष अपनी प्रियतमा को याद करता है। उसकी बाँकी चितवन यक्ष की स्मृतियों में अंकित है। बादलों से वह अपनी नवोढ़ा को पहचान लेने के लिये उसके लक्षणों का वर्णन करता है। वह बताता है कि उसकी प्रिया सोने की लता-सी है जो उसकी याद में सेज पर पड़ी बिलख रही होगी और जैसे ही तुम उसे मेरा संदेश देने के लिये बुलाओगे वह अपने बिखरे केशों की परवाह किये बिना दौड़ती हुई चली आयेगी तथा तुम्हें अपने गले से लगा लेगी-

सोनवा की लतर सी पतरी हमरी दृग पुतरिया
हो कि धीरे-धीरे ना
बिलखति होइहैं परि सेजरिया हो कि धीरे-धीरे ना
सुनते पिय सनेसवा धावल अइहैं बिखरल केसवा
हो कि धीरे-धीरे ना
तोहँके भेंटिहैं धरि अँकवरिया हो कि धीरे-धीरे ना [12]

1.1.5 उद्वेग-

उद्वेग की अवस्था में सुखकारी वस्तुयें दु:खकारी हो जाती हैं। सावन की फुहार जो सामन्य परिस्थितियों में गुदगुदी उत्पन्न कर देती है वही विरह के पलों में विष की बौछार लगती है-

बिष बोरि तिरिया लागै सवनी फुहार मैना
भीजै अगवार मैना भीजै पिछुआर मैना
फुर फुर हवा में उडै अँचरा क तार मैना
सवना सुहवना लागै सबकै सिंगार मैना
मोरे लेखे नगवा क फन फुफुकार मैना[13]

1.1.6 प्रलाप-

प्रलाप का अर्थ ही है अटपटी बात, बेसिर-पैर की बात। इसमें नायक या नायिका वास्तविक धरातल से दूर अटपटी कल्पनायें करते हैं और उनके वशीभूत बिना सिर-पैर की बातें करते हैं। जैसे प्रिय के पास उड़कर पहुँच जाने की बात-

उड़कर कैसे पहुँचे तुम तक बावरिया बरसाने वाली
क्या प्राण निकलने पर आओगे जीवन वन के वनमाली[14]

1.1.7 उन्माद-

उन्माद का अर्थ ही है मतवालापन। गोपियाँ कृष्ण के प्रेम में इतनी पागल हैं कि दही बेचने के लिये 'दही लो दही' की जगह 'कृष्ण लो कृष्ण' कहने लगती हैं-

कैसे भूली कदम्ब-पादप की छाया अहो नंदलाला
बेचती 'कृष्ण लो कृष्ण' टेर दधि भूली क्या अहीर-बाला[15]

ठीक यही उन्माद यक्ष को होता है। वह आकाश में एकटक निहारते हुए बादलों से विनती करता है। भला बादल कैसे सन्देश पहुँचायेंगे-

चढ़त अषढ़वा नयन बढ़ियाइल
हुटकइ लागल साँस रे
डब-डब नयना बदरवा से बिनवै
एकटक ताकि अकास रे।[16]

1.1.8 व्याधि-

शरीर की क्षीणता, काया की पाण्डुरता, मुख का म्लान होना इत्यादि को व्याधि कहा गया है। जैसे यहाँ अशोक वाटिका की सीता, राम के विरह में निष्प्रभा हो गयी हैं। उनकी काया पीली पड़ गयी है-

प्रभु! विरहा परिपाण्डु निष्प्रभा कृशा विवर्णा
दिवस इंदु सी ज्यों हेमन्तिनी लता अपर्णा
अति त्रस्ता शिशु मृगी सदृश व्यथिता सुकुमारी

विषम वेदना झेल रही है जनक दुलारी [17]

1.1.9 जड़ता-

शारीरिक अथवा मानसिक चैतन्य की लुप्तावस्था या कायिक-मानसिक निश्चेष्टता ही जड़ता है। कृष्ण की प्रतीक्षा में राधा शय्या की सिलवटें तक ठीक नहीं कर रही हैं। एक तरह से कहा जा सकता है कि अकर्मण्यता की स्थिति आ जाती है-

कब से तेरा पथ जोह रही हूँ सजल बिछा पलकें प्रियतम
तुम जैसे छोड़ गये वैसी ही सूनी सेज पड़ी अनुपम
हैं अस्त-व्यस्त सिलवटें न सम करती उनको कर फैलाये
तेरे आने तक प्राण प्रेम के रेखाचित्र न मिट जायें [18]

1.1.10 मरण-

रसविच्छेदहेतुत्वान्मरणं नैव वर्ण्यते।[19] अर्थात विप्रलम्भ शृंगार में मरण के वर्णन का निषेध है। इससे रस विच्छिन्न हो जाता है। अब यदि इसका वर्णन किया भी जाय तो दो प्रकार से किया जा सकता है- प्रथम मरणासन्न दशा में दूसरा मरने की हार्दिक इच्छा के रूप में।[20] पंकिल की राधा भी कृष्ण-वियोग न सह पाने के कारण मृत्यु का वरण करना चाहती हैं-

मैं पद-पखार अंचल पसार पोंछती स्वेद-जल-बूँद बही
हा! जनमी ही क्यों जगत-बीच मृत्यु भी मुझे पूछती नहीं[21]

1.2 करुण-विप्रलम्भ-

विप्रलम्भ शृंगार की मरण-दशा तथा करूण-विप्रलम्भ के बीच बहुत ही क्षीण विभाजक रेखा है। ठीक ऐसी ही क्षीण विभाजक रेखा करुण-विप्रलम्भ तथा करुण-रस के बीच में भी है। हम पहले भी चर्चा कर चुके हैं कि विप्रलम्भ शृंगार में मरण के वर्णन का निषेध है। प्रेमियों के वियोग की दो स्थितियाँ सम्भव हैं-१. स्थायी वियोग, २. अस्थायी वियोग्। नायक-नायिका के जीवनकाल में किसी भी कारणवश जो वियोग होता है वह अस्थायी वियोग है और वह विप्रलम्भ शृंगार के करुण-विप्रलम्भ के अंतर्गत आयेगा जबकि इनमें से किसी एक की मृत्यु हो जाने पर जो वियोग होगा वह स्थायी वियोग होने के कारण करुण-रस की परिधि में आयेगा। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मृत्यु ही वह सीमारेखा है जो करुण-विप्रलम्भ और करूण-रस के बीच अंतर करती है। मृत्यु के पहले तक करुण-विप्रलम्भ तथा मृत्यु के बाद करुण-रस। यहाँ सीता का संतप्त कलेवर अपने प्रिय की सुधि में क्रंदन कर रहा है। आँखें ताम्बई हो गयी हैं। सीता का यह करुण-रुदन सुनकर अशोक के पुष्प और कलियाँ काँप जा रहे हैं।

प्रियतम चिंता ग्लान वपुष संतप्त कलेवर
कब आओगे प्राणनाथ प्रसरित क्रंदन स्वर
उन्निद्राधिकतांत ताम्रनयनी का रोदन
सुन सुन कंपित कांत अशोक सुमन किसलय तन[22]

कृष्ण जब अक्रूर के साथ मथुरा प्रस्थान करते हैं तो एक उम्मीद दे जाते हैं वापस आने की। गोपियाँ उसी क्षीण तार से अटकी हुईं हैं पर सीता-हरण के बाद सीता को कोई ठोस आधार नहीं है यह मानने का कि प्रभु से भेंट होगी ही। यह वियोग स्थायी-सा प्रतीत होने लगता है किंतु मन में एक आस भी है कि मिलन होगा ही। अत: यहाँ करुण-विप्रलम्भ होगा। एक और उदाहरण लेते हैं। सीता का करुण विलाप सुनकर छाती फट-फट जाती है, टहनियों से पुष्प की पँखुरियाँ झर-झर जाती हैं। स्थायी लगने वाले वियोग के बावजूद मिलन की आशा है, अत: करुण-विप्रलम्भ है-

करती करुण विलाप श्रवन कर फटती छाती
विटप वृन्त से सुमन पंखुरी झर झर जाती
छलक-छलक जाती न नयन की गगरी रीती
नेत्रावरणी अश्रु बिंदु अधरों से पीती[23]

1.3 प्रवासविप्रलम्भ-

प्रवासो भिन्नदेशित्वं कार्याच्छापाच्च सम्भ्रमात्।[24] कार्यवश, शापवश अथवा सम्भ्रमवश देशांतरगमन को प्रवास विप्रलम्भ माना जाता है। कार्यवश प्रवास के उदाहरणस्वरूप पंकिलरचित निम्न पंक्तियाँ देखिये-

रोहिनीं बितल आली बिति गइलीं अदरा।
कहलैं चलति बिरियाँ धनि ना भुलइबै
चढतै असढवा बहुरि धनि अइबै
घरियै में घर जरै नव घरि भदरा।
का हकहीं सुरुजो भइल निरमोही
कब होइहैं भोरवा बहुरिहैं बटोही
सुतलैं सुरुज ओढि बदरा क चदरा।[25]

यहाँ पति (नायक) एक नियत समय में आने की बात कह गया है किंतु वह अवधि बीत जाने पर भी आया नहीं है। कहाँ हो वह आषाढ़ चढ़ते ही आने वाला था लेकिन यहाँ रोहिणी और आर्द्रा के बीतने पर भी उसकी कोई खबर नहीं मिली है। नायिका बिसूर रही है।

शापवश प्रवास के उदाहरण में कालिदास के विरही यक्ष के प्रसिद्ध उदाहरण भला और कौन हो सकता है। संस्कृत कवि की भावनाओं को ज्यों का त्यों पंकिल ने अपनी कविता में रख दिया है। विरही-पति-यक्ष पर्वत की चोटी पर बैठा शीत और ग्रीष्म तो जैसे-तैसे काट लेता है किंतु पावस लगते ही उसका धैर्य चुक जाता है-

बिरही बलम एक गिरि पर बइठल
ढुर-ढुर ढारइ आँस रे
कवनो जतन हिम ग्रीषम कटलस
लागल पावस मास रे[26]

वह बादलों को सम्बोधित कर कह ही तो उठता है-

भागा जनि गगनवाँ होइ जा ठाढ़ भइया बिरनू
भइया के बिपतिया से ला काढ़ भइया बिरनू
सूजल होइहैं रोइ तोहरे भाभी कै पलकिया

आज सखि कै सुधिया भइलीं गाढ़ भइया बिरनू
लहकै मोर जियरवा जइसे जेठवा की दुपहरी
नयना भरि छछइलैं जस असाढ़ भइया बिरनू[27]

(भागो मत बादलों! भाई को विपत्ति से निकाल लो, तुम्हारी भाभी की आँखे रो-रो कर सूज गयी होंगी, आज उसकी बड़ी याद आ रही है, मेरा कलेजा जेठ की दोपहरी की तरह दहक रहा है, आँखें आषाढ़ की तरह छलछला आयी हैं।)

यक्ष यहीं नहीं रुकता है। वह कहता है कि जाकर मेरी प्रियतमा से कह देना कि उसके बिना रहना अब असम्भव है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि पंकिल की रचनाओं में विविध स्थलों पर प्रसंगानुकूल विप्रलम्भ-शृंगार का स्वाभाविक उद्रेक हुआ है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची-

1. काव्यानुशासन 2.30
2. प्रेम नारायण 'पंकिल' (2014): बावरिया बरसाने वाली पद सं. 150 पृ. 75
3. प्रेम नारायण 'पंकिल' (2014): बावरिया बरसाने वाली पद सं. 77 पृ. 39
4. अभिलाषविरहेर्ष्याप्रवासशापहेतुक इति पञ्चविध:(काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास पृ.१२३ ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी १९६०)
5. मम्मट, काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास पृ. १२४ ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी १९६०
6. साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद, श्लोक सं १९०
7. प्रेम नारायण 'पंकिल' (2014): बावरिया बरसाने वाली पद सं. 148 पृ. 74
8. वही, पद सं. 150 पृ. 75
9. वही, पद सं. 151 पृ. 76
10. वही, पद सं. 137 पृ. 69
11. वही, पद सं. 131 पृ. 66
12. प्रेम नारायण 'पंकिल' (2019): चोंचिया पसरले चिंहुँक बोले पपिहा, पृ. 2
13. वही, पृ. 7
14. प्रेम नारायण 'पंकिल' (2014): बावरिया बरसाने वाली पद सं. 105 पृ. 53
15. वही, 132 पृ. 66
16. प्रेम नारायण 'पंकिल' (2019): चोंचिया पसरले चिंहुँक बोले पपिहा, पृ. 1
17. प्रेम नारायण 'पंकिल': हा! यह दिन भी बीता, पद सं. 4 (प्रकाशनाधीन)
18. प्रेम नारायण 'पंकिल' (2014): बावरिया बरसाने वाली पद सं. 140 पृ. 70
19. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद सूत्र-१९३

20. वही, तृतीय परिच्छेद सूत्र-१९४
21. प्रेम नारायण 'पंकिल' (2014): बावरिया बरसाने वाली पद सं. 146 पृ. 73
22. प्रेम नारायण 'पंकिल': हा! यह दिन भी बीता, पद सं. 5 (प्रकाशनाधीन)
23. वही, पद सं. 20 (प्रकाशनाधीन)
24. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद सूत्र-204
25. प्रेम नारायण 'पंकिल' (2019): चोंचिया पसरले चिंहुँक बोले पपिहा, पृ. 6-7
26. वही, पृ. 6-7
27. वही, पृ. 6-7